भाग- ४

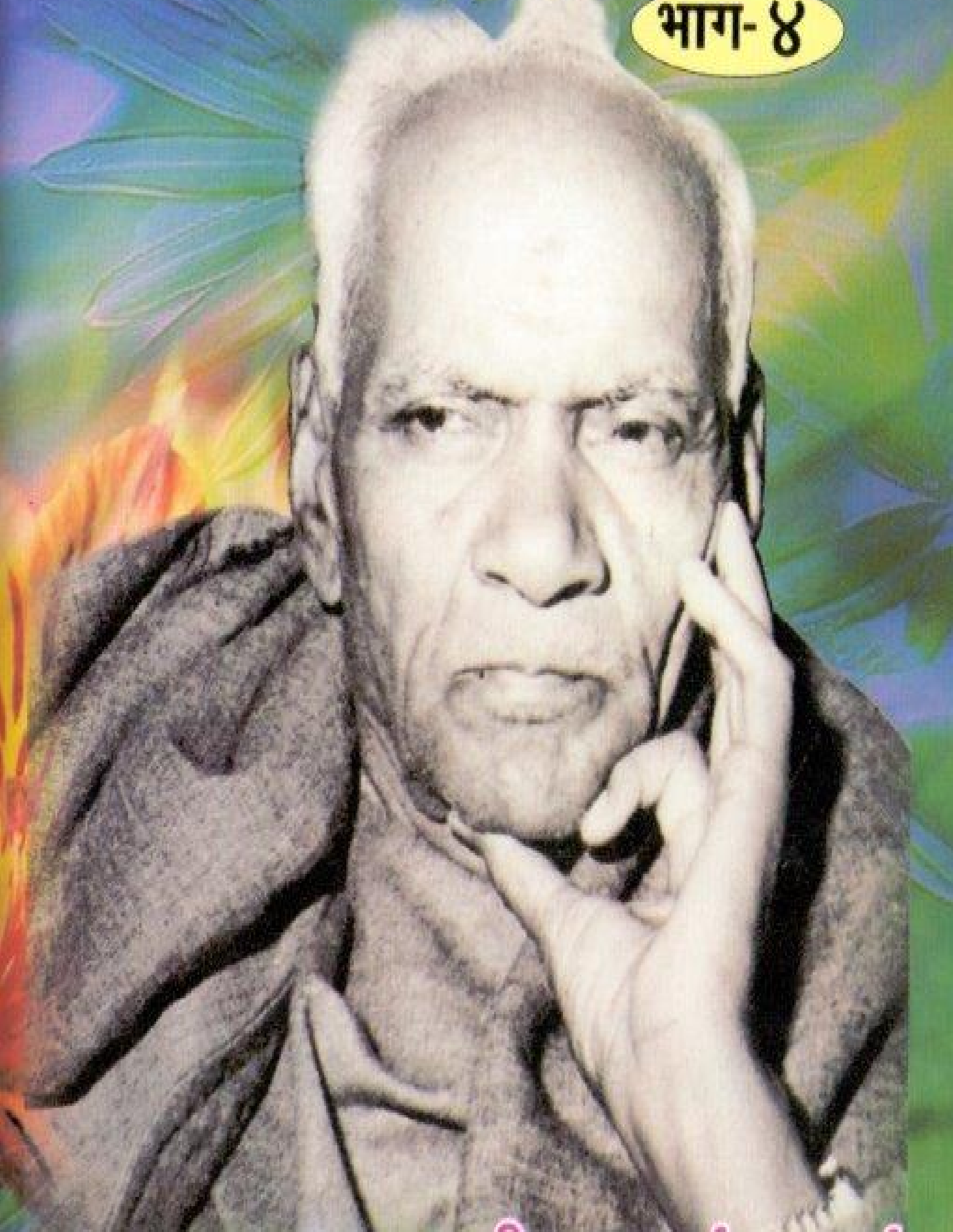

राजनीति में हमारी भूमिका

शक्ति की समीक्षा

राजनीति ने आज मानव जीवन के सभी क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया है। इसलिए उसका महत्त्व बहुत हो गया है। प्राचीनकाल में न्याय और व्यवस्था तक ही शासन का हस्तक्षेप होता था, पर अब उसका क्षेत्र बहुत बढ़ गया है और जीवन के हर पहलू को राजनीति प्रभावित करती है। स्वास्थ्य, संस्कृति, भाषा, साहित्य, कला, विज्ञान जैसे जनरुचि के विषय भी अब राजनैतिक प्रभाव क्षेत्र में आते जा रहे हैं। शिक्षा, उत्पादन, श्रम, व्यवसाय, शासन, न्याय, निर्माण, विज्ञान, शिल्प आदि तो पहले से ही उसके नियन्त्रण में पहुँच चुके हैं। धीरे-धीरे जीवन का हर क्षेत्र राजनैतिक प्रभाव के अन्तर्गत आता चला जा रहा है।

जहाँ अधिनायकवाद का प्राधान्य है, वहाँ तो जनता को शासनतन्त्र की मशीन का एक पुर्जा मात्र बनकर रहना पड़ता है। जानने, सोचने और निष्कर्ष निकालने तक के साधन (अधिकार) लोगों के हाथ में नहीं रहते। प्रचार का सम्पूर्ण उपकरण सरकार के हाथ में रहने से जनमानस को शासन जिधर चाहे उधर मोड़ता, बदलता रहता है। ऐसी दशा में यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि आज राजनीति की, शासनतन्त्र की प्रबलता सर्वोपरि बनती चली जा रही है और कल वह समय आयेगा, जब व्यक्ति शासन के हाथ का खिलौना मात्र बनकर रह जायेगा।

जन-जीवन में अपनी प्रमुखता रखने वाली राजनीति में शासन तन्त्र में, यदि कहीं दोष रहते हैं, तो उसका दुष्परिणाम सर्वसाधारण को बुरी तरह भोगना पड़ता है। वर्तमान स्थिति में जबकि जन

साधारण की नैतिक स्थिति निम्न स्तर की ओर गिर रही है, शासन तन्त्र के संचालकों का उच्च चरित्र से, उच्च आदर्शों से पूर्ण होना आवश्यक है। 'यथा राजा तथा प्रजा' की उक्ति असत्य नहीं है। बड़ों को देखकर छोटे उनसे प्रभाव ग्रहण करते हैं, अनुकरण के लिए अग्रसर होते हैं। प्राचीनकाल में सन्तों, ऋषियों और ब्राह्मणों का राजा और प्रजा सब पर नियन्त्रण था, उनका व्यक्तित्व ऊँचा माना जाता था, इसलिये जनता उनकी भावनाओं और प्रेरणाओं से प्रभावित होकर अपनी दिशा निर्धारित करती थी।

अब वह स्थान शासन-संचालकों को मिल रहा है। उन्हीं के वक्तव्यों, भाषणों, गतिविधियों और योजनाओं से अखबार, रेडियो, पुस्तकें भरे रहते हैं। सभा-सम्मेलनों में उन्हीं की चर्चा प्रधान रूप से होती है। जन-चर्चा का विषय वे ही हैं। किसी बिगाड़ या सुधार के लिये उन्हीं को उत्तरदायी माना

जाता है। इतनी ऊँची स्थिति जिस वर्ग ने प्राप्त कर ली है, उन शासन संचालकों का प्राचीनकाल के सन्तों और ऋषियों के समान ही आदर्श होना चाहिये अन्यथा राज्य कर्मचारियों पर ही नहीं, जन-साधारण पर भी उसकी प्रतिक्रिया होगी। हीन चरित्र का शासक वर्ग कभी भी जन प्रेरणा का प्रकाश स्तम्भ नहीं बन सकता।

देशगत राजनीति पर विचार किया जाय या अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर, सभी क्षेत्रों से उच्च चरित्र के मार्गदर्शकों की नितान्त आवश्यकता अनुभव की जा रही है। इसी कमी के कारण समस्त विश्व की जनता क्षुब्ध और निराश होती चली जा रही है।

संसार के राजनीतिज्ञों के पास सारे साधन मौजूद हैं। उच्च शिक्षा, सुविकसित मस्तिष्क, चतुर सलाहकार, विज्ञान, जन सहयोग सभी कुछ तो उन्हें प्राप्त है। कमी केवल उदारता और उद्दात्त भावनाओं

की है। काश, आज की दुनिया का नेतृत्व किन्हीं महापुरुषों के हाथ रहा होता, काश गांधी, ईसा, बुद्ध, सुकरात, कन्फ्यूशियस सरीखी आत्माओं के हाथों शासनाध्यक्षों का कार्य संचालित हुआ होता तो दुनिया आज की तरह नरक की स्थिति में पड़ी न रहकर स्वर्ग बन गई होती। काश, राजनीति ने कूटनीति (धूर्तता) का रूप छोड़कर धर्मनीति बनना स्वीकार किया होता, तो आज सर्वत्र शान्ति, प्रेम और आनन्द की ही निर्झरिणी बह रही होती।

सम्पन्नता, शिक्षा, कला, विज्ञान एवं चतुरता बढ़ रही है, पर चरित्र बल घट रहा है। संसार में शासन तन्त्र अधिक शक्तिशाली बनते चले जा रहे हैं पर उनकी वह विशेषता घट रही है, जिसके प्रभाव से जनमानस में प्रेरणा और आशा का संचार होता है। आज जबकि जन-जीवन के सारे साधन राजनीति के प्रभाव क्षेत्र में चले जा रहे हैं, तो यह आवश्यक

है कि उसके नेता एवं संचालकों का व्यक्तित्व, चरित्र एवं भावना का स्तर इतना ऊँचा हो कि दण्ड भय से नहीं श्रद्धा से अवनत होकर लोग उनका अनुसरण करने लग जायें। इसी से जन-जीवन में सच्ची प्रगति का संचार हो सकता है। यदि यह क्षेत्र दुर्बल बना रहा, बिल्ली के गले में घण्टी न बँध सकी, तो भ्रष्टाचार की स्थिति ज्यों की त्यों बनी रहेगी। जनता सरकार को दोष देती रहेगी और सरकार जनता का कसूर बताती रहेगी। समस्या जहाँ की तहाँ उलझी पड़ी रहेगी।

अनीति को रोकना और साधनों को बढ़ाना शासन का कार्य है। सबको समान अवसर तथा समान न्याय प्राप्त कराना राजकीय उत्तरदायित्व माना गया है। इन उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए राज्य कर्मचारियों को न्याय और कानून के प्रति नितान्त निष्ठावान, निर्लोभी, निष्पक्ष एवं

कर्त्तव्यपरायण होना चाहिए। कानून तो पुस्तकों में बन्द रहते हैं, उनका पालन करना और कराना कर्मचारियों का काम है। उनका चरित्रवान एवं उच्च आदर्शवादी होना ही प्रजा की सुख-शान्ति की गारण्टी हो सकती है।

यदि वह शासकवर्ग अपने कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों की उपेक्षा करेगा तो प्रजा का न्याय पर से विश्वास कम होता चलेगा और हर क्षेत्र में अनीति पनपेगी, भ्रष्टाचार बढ़ेगा, रिश्वतखोरी पनपेगी और अधिकारियों को अपने पक्ष में करके दुष्ट लोग जनता को संत्रस्त करेंगे। टैक्स चुरायेंगे तथा निर्भय होकर नाना प्रकार के अपराध करेंगे। अपराधों की रोकथाम के समस्त उपाय एक ओर और राज्य कर्मचारियों की कर्त्तव्यपरायणता को एक ओर रखकर तोला जाय, तो कर्मचारियों की ईमानदारी ही अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी। इसके अभाव में

नाना प्रकार की योजनाएँ बनती-बिगड़ती रह सकती हैं, पर जनहित का, समस्या का ठीक समाधान न हो सकेगा।

शक्ति के साथ पवित्रता जरूरी

राजनीति की शक्ति निश्चय ही महत्त्वपूर्ण है। उसका सुसंचालन जनता के लिए सब प्रकार श्रेयस्कर हो सकता है। संसार के जिन देशों का इन दिनों उत्कर्ष हुआ है, उनमें वहाँ की सुयोग्य सरकारों का बड़ा श्रेय है। राजनीतिज्ञों में सूझ-बूझ, कुशलता, क्षमता-योग्यता का होना आवश्यक है, इसके बिना शासन तन्त्र ठीक प्रकार नहीं चल सकता। पर इससे भी अधिक आवश्यक है, शासकों की ईमानदारी। यदि वे आदर्शों के प्रति निष्ठवान् होंगे, व्यक्तिगत जीवन में पवित्रता और सेवा का व्रत धारण किये

हुए होंगे, तो कम योग्यता होने पर भी उनके कार्यों से जनता का अत्यधिक हित साधन होता चलेगा।

इसके विपरीत यदि वे आलसी, प्रमादी, लालची, अहंकारी और स्वार्थी हैं, तो फिर उनकी बड़ी से बड़ी योग्यता भी निरर्थक सिद्ध होगी। इतना ही नहीं, उनका व्यक्तित्व जनता के लिए हानिकर और भारस्वरूप ही सिद्ध होगा। सुशासन की छाया में किसी भी देश का आशाजनक विकास होना स्वाभाविक है। सुशासन की सबसे बड़ी कसौटी शासकों की सच्चरित्रता और आदर्शों के प्रति गहन-निष्ठा ही हो सकती है। जहाँ इस तथ्य में कमी रहेगी, वहाँ प्रकाशित घोषणाएँ एवं नीतियाँ कितनी ही आकर्षक क्यों न हों, उनके विपरीत ही काम होता रहेगा और उस जनहित को हानि पहुँचती रहेगी।

जिन लोगों की दिलचस्पी राजनीति में है उनका कर्त्तव्य है कि प्रशासन के हर क्षेत्र में ईमानदारी और आदर्शवादिता उत्पन्न करने का प्रयत्न करें। राजनीतिक दलों में से प्रत्येक की नीतियाँ और घोषणाएँ उत्तम हैं। इनमें से किसी का भी सहारा ईमानदारी के साथ लिया जाये, तो उससे देश का उत्थान ही हो सकता है। नीतियाँ किसी भी पार्टी की बुरी नहीं कहीं जा सकतीं। संसार के विभिन्न देशों ने विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम अपनाकर उन्नति की है। इस उत्कर्ष में वे नीतियाँ नहीं; वरन् शासन तन्त्र की पवित्रता ही प्रधान कारण रही हैं। आदर्शों से भ्रष्ट लोग किसी भी शासन पद्धति को अपनायें, किसी भी रीति की घोषणा करें, परिणाम कुछ भी नहीं निकलेगा।

इसलिये आवश्यकता तो इस बात की है कि राजनीति के मर्मस्थल पर हमारा ध्यान हो। नेतृत्व

उन लोगों के हाथ में सौंपा जाए, जो आदर्शवाद से अपने जीवन का हर पहलू ओत-प्रोत किये हुए रह सकें। सार्वजनिक जीवन और व्यक्तिगत जीवन इस प्रकार के दो भेद करना उचित नहीं। कहा यह जाता है कि सार्वजनिक जीवन में मनुष्य को कर्त्तव्य पालन करना है, तो उसके व्यक्तिगत जीवन की अनैतिकताओं की ओर क्यों ध्यान दिया जाये ? यह तर्क निरर्थक है। वस्तुत: चरित्र की सच्ची परीक्षा व्यक्तिगत जीवन में होती है। जो मनुष्य व्यक्तिगत-जीवन में दुराचार करता होगा और भ्रष्ट परम्पराएँ अपनाता होगा, वह सार्वजनिक जीवन में ईमानदार रह सके, यह कदापि सम्भव नहीं। आदर्शों के प्रति गहन आस्था जिसके जीवन में नहीं है उसके अनाचार व्यक्तिगत जीवन तक ही सीमित रहेंगे, इसकी कोई गारण्टी नहीं हो सकती।

शासन की पवित्रता उतनी ही आवश्यक है जितनी धर्म पुरोहितों की सदाचारिता। जो जितना महत्त्वपूर्ण कार्य है उसे उठाने के लिए उतनी ही उत्तरदायी एवं परखे हुए व्यक्तित्व अभीष्ट हैं। प्रजातन्त्र पद्धति के शासन में हर मतदाता का परम पवित्र कर्त्तव्य है कि वोट देते समय किसी लोभ या पक्षपात से प्रेरित होकर मतदान न करें वरन् आदर्शवादी व्यक्तित्वों को ही सर्वोपरि स्थान दें और यह भी देख-रेख रखें कि शासन तन्त्र में चरित्र भ्रष्टता तो बढ़ने नहीं लगी ? यदि यह बुराई बढ़ रही होगी, तो अच्छी से अच्छी योजनाएँ और नीतियाँ निष्फल चली जायेंगी। भ्रष्टाचारी लोग अपने छोटे-छोटे स्वार्थों के लिए जनता का भारी अहित करने में भी संकोच नहीं करते। इसलिये यदि किसी राष्ट्र को अपना स्वस्थ विकास करना हो, तो शासनतन्त्र की सच्चरित्रता का पूरा ध्यान रखें। प्रजा की ओर से अधिकारियों

को प्रलोभन देकर कोई अनुचित कार्य कराने का प्रयत्न न किया जाय और कर्मचारी जनता को परेशान करने की शक्ति का दुरुपयोग करके जनता के शोषण की विवशता उत्पन्न न करने पायें। ऐसी व्यवस्था बनाना उन लोगों का कार्य है जिनके कन्धे पर शासन तन्त्र चलाने का उत्तरदायित्व पड़ा हुआ है।

राजनैतिक दृष्टि से हम सफल हुए या असफल? इसका एक ही प्रमाण हो सकता है कि शासनतन्त्र के संचालकों और नागरिकों में कर्त्तव्यपरायणता एवं नैतिकता कितनी बढ़ी? इस कसौटी पर जो शासन खरा उतर सकेगा, उसे ही इस राजनैतिक सफलता का श्रेय मिलेगा। इतिहास साक्षी है कि जब भी, जहाँ भी, नैतिक दिवालियापन बढ़ा है तब उसका परिणाम सर्वनाश के रूप में प्रस्तुत हुआ है। इसलिये यदि राजनीति की प्रचण्ड

शक्ति से राष्ट्र को लाभान्वित करना अभीष्ट हो, तो एक ही काम पर सर्वोपरि ध्यान रखें और वह है शासकीय कर्मचारियों की सज्जनता एवं उसके फलस्वरूप जनता में उत्पन्न होने वाली उत्साहवर्द्धक प्रतिक्रिया। राष्ट्र इसी नीति पर चलते हुए उठते और बढ़ते हैं।

धर्मतन्त्र का सहगमन जरूरी

लोग एक प्रश्न अक्सर करते रहते हैं कि "हम राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश क्यों नहीं करते? और राजतन्त्र को अपने अनुकूल सरकारी स्तर पर वह सब सहज ही क्यों नहीं करा लेते? जिसके लिये इन दिनों इतनी अधिक माथापच्ची कर रहे हैं।" इस सुझाव के पीछे अपनी-अपने संगठन की वह क्षमता और व्यापकता है, जिसका वही मूल्यांकन कर सकने वाले लोग अनुभव करते हैं कि इन दिनों अपना

तन्त्र–किसी भी राजनैतिक, सामाजिक या धार्मिक तन्त्र से कम प्रखर एवं कम सशक्त नहीं है।

वर्तमान युग में राजनीति की सर्वोपरि सत्ता और महत्ता को स्वीकार करने में हमें कोई आपत्ति नहीं है। यह स्वीकार करने में हमें कोई अड़चन नहीं है कि सरकारें यदि सही कदम उठा सकें, सूझ–बूझ से काम लें और अपने क्रियातन्त्र को सुव्यवस्थित रख सकने में समर्थ हों, तो वे अपने क्षेत्र में आश्चर्यजनक प्रगति कर सकती हैं। जापान, चीन, रूस, जर्मनी, अरब, इजरायल आदि ने चन्द दिनों के भीतर अपने ढंग से अपनी योजनानुसार अभीष्ट परिवर्तन के प्रकार प्रस्तुत कर लिये, इसके आश्चर्यजनक उदाहरण सामने हैं। हम उन लोगों में से नहीं हैं जो वास्तविकता की ओर से जान–बूझकर आँखें बन्द किये रहें। धर्म का राजनीति से कोई

सम्बन्ध नहीं, यह दूसरों ने भले कहा हो हमने यह शब्द कभी नहीं कहे हैं। इतिहास ने हमें सिखाया है कि धर्म की स्थापना में राजनीति का सहयोग आवश्यक है और राजनीति के मदोन्मत्त हाथी पर धर्म का अंकुश रहना चाहिए। दोनों एक-दूसरे के विरोधी नहीं, वरन् पूरक हैं। दोनों में उपेक्षा या असहयोग की प्रवृत्ति नहीं, वरन् घनिष्टता एवं परिपोषण का साधन तारतम्य जुड़ा रहना चाहिए।

इतिहास साक्षी है कि जनता के सुख-सौभाग्य में अभिवृद्धि का आधार दोनों के बीच साधन सहयोग ही प्रमुख तथ्य रहा है। गुरु वशिष्ठ के मार्गदर्शन और रघुवंशियों के शासन क्रम ने त्रेता में उस सतयुग की स्थापना की थी, जिसे हम रामराज्य के नाम से आदर के साथ याद करते हैं। चाणक्य के मार्गदर्शन से गुप्त साम्राज्य पनपा, फैला और परिपुष्ट हुआ था।

पाण्डवों का मार्गदर्शन कृष्ण ने किया था और दुशासन का उन्मूलन कर सुशासन की स्थापना की थी। राजा मान्धाता का सहयोग शंकराचार्य की दिग्विजय का महत्त्वपूर्ण आधार था। भगवान् बुद्ध के प्रभाव से सम्राट् अशोक का बदलना और अशोक की सत्ता के सहयोग से बुद्ध धर्म का समस्त एशिया में फैल जाना एक ऐसी सच्चाई है, जिससे इन्कार नहीं किया जा सकता।

समर्थ गुरु रामदास जानते थे कि धर्म प्रवचनों से ही काम चलने वाला नहीं है, सुशासन की स्थापना भी आवश्यक है। अस्तु; उन्होंने शिवाजी जैसे अपने प्रधान शिष्य को इस मार्ग पर अग्रसर किया। अग्रसर ही नहीं किया, अपने स्थापित ७०० महावीर देवालयों के माध्यम से आवश्यक रसद, पैसा तथा सैनिक जुटाने की भी व्यवस्था की। शिवाजी उसी सहयोग के बल पर स्वतन्त्रता संग्राम की ऐतिहासिक भूमिका

प्रस्तुत कर सके। गुरु नानक का पन्थ एक प्रकार से स्वाधीनता के सैनिकों से ही बदल गया। उनने "एक हाथ में माला और एक हाथ में भाला" का आदर्श प्रस्तुत करके यह बता दिया कि राजतन्त्र और धर्मतन्त्र को विरुद्ध दिशाओं में नहीं चलने देना चाहिए; वरन् उनके कदम एक ही दिशा में उठने की आवश्यकता हर कीमत पर पूरी की जानी चाहिए। बन्दा वैरागी ने सच्चे अध्यात्मवादी का उदाहरण प्रस्तुत किया और समाधि, साधना एवं ईश्वर के प्रति आत्मसमर्पण की तरह ही अपना सर्वस्व राजनीति सदाशयता की ओर मोड़ने के प्रयास में अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर दिया।

भगवान् का धर्म से ही सीधा सम्बन्ध जुड़ता है पर अधर्म के अभिवर्द्धन के प्रधान कारण दु:शासन को बदलने के लिए वे समय-समय पर अवतार

धारण करते हैं। कच्छ, मच्छ, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध आदि अवतारों ने कुशासन के विरुद्ध सीधी कमान सँभाली। उनकी लीलाओं में इस प्रकार के उन्मूलन एवं परिवर्तन का घटनात्मक क्रम ही प्रधान है। अवतारों ने अन्य चरित्र भी दिखाये होंगे; पर उन्हें जिस प्रमुख प्रयोजन के लिए आना पड़ा, वह अधर्म की सत्ता को धर्म स्थापना के उपयुक्त बनना ही प्रधान कार्य था। अगला निष्कलंक अतवार जो होने जा रहा है, उसकी दृष्टि भी सुशासन की स्थापना पर ही होगी।

द्रोणाचार्य ने इस सच्चाई को दो टूक स्पष्ट कर दिया है। वे कहते थे-

अग्रतः चतुरो वेदाः पृष्ठतः सशरं धनुः।
इदं ब्राह्मं इदं क्षात्रं शास्त्रादपि शरादपि॥

-महाभारत

अर्थात्- हम वेदों को आगे रखकर लोगों को समझाने और सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न करते हैं। साथ ही पीठ पर धनुष-बाण भी रखते हैं। यह धर्म शिक्षा 'ब्राह्म' है और यह शस्त्र धारण 'क्षात्र' है। दोनों शक्तियों के समन्वय से ही समस्याएँ सुलझती हैं।

उपर्युक्त सत्य का प्रतिपादन करने वाले तथ्यों से इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं। अभी कल परसों महात्मा गांधी, जिन्हें इस युग का धर्म पुरुष कह सकते हैं, अपनी जीवन साधना से राजनीति का प्रधान समन्वय करके यह आदर्श प्रस्तुत करते रहे हैं कि धर्म और राजनीति एक-दूसरे के विरोधी नहीं, वरन् पूरक हैं। लोकमान्य तिलक, महामना मालवीय, स्वामी श्रद्धानन्द जैसे धर्मवेत्ता मनीषियों ने अपनी धर्म साधना के साथ राजनीति को भी अविच्छिन्न रूप से जोड़े रखा। इससे उनकी

धार्मिकता घटी नहीं; वरन् प्रखर एवं समुज्ज्वल ही होती चली गयी।

शासन आज जिस तरह जीवन के हर पक्ष में प्रवेश करता चला जाता है और धीरे-धीरे व्यक्ति जिस तरह राज्य की कठपुतली बनने जा रहा है, उस बारीकी को समझने वाला कोई सूक्ष्मदर्शी व्यक्ति राजनीति से सर्वथा पृथक् धर्म की कल्पना भी नहीं कर सकता। जो धर्म को राजनीति से अलग होने की बात कहते या समझते हैं, उन्हें नितान्त भोला ही कहा जा सकता है। प्रतिकूल राजनीति में धर्म को जीवित रहना भी सम्भव नहीं। रूस, चीन आदि साम्यवादी देशों की धार्मिकता की कैसी दुर्गति हुई यह सबके सामने है। तिब्बत का धर्म शासन करने वाले लामाओं को राजनैतिक प्रतिकूलता ने कहाँ से लाकर कहाँ पटक दिया। राज्याश्रय पाकर ईसाई चर्च कितनी प्रगति कर रहा है और मध्य युग में

राज्याश्रय ने इस्लाम धर्म के विकसित होने में कितनी सहायता की? इन तथ्यों से कोई मूर्ख ही आँखें मींच सकता है।

हमारी दिशाधारा

इन तथ्यों को जानते हुए भी हम और हमारा संगठन राजनीति में प्रवेश क्यों नहीं करता, इसके सम्बन्ध में लोग हमें उलाहना देते और भूल सुधारने के लिये आग्रह करते हैं। वे जानते हैं कि हम लोग शासन तन्त्र में प्रवेश करने में बहुत दूर तक सफल हो सकते हैं। इसलिए उनकी आतुरता आदि भी अधिक रहती है। कितनी ही राजनैतिक पार्टियों द्वारा अपनी ओर आकर्षित करने और प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप में सम्मिलित होने के लिये डोरे डाले जाते हैं और इसके बदले में वे हमें किस प्रकार सन्तुष्ट कर सकते हैं, इसकी पूछताछ करते रहते हैं। यह

सिलसिला मुद्दतों से चलता रहा है और जब तक हम विदाई नहीं ले लेते, तब तक चलता ही रहा और हो सकता है कि यह परिवार वर्तमान क्रम से आगे बढ़ता रहा और सशक्त बनता रहा, तो इस प्रकार के दबाव उस पर आगे भी पड़ते रहें।

इस सन्दर्भ में हमारा मस्तिष्क बहुत साफ है। शीशे की तरह उसमें पूर्ण स्वच्छता है। बहुत चिन्तन और मनन के बाद हम एक निष्कर्ष पर पहुँचे हैं और बिना लाग-लपेट, छिपाव एवं दुराव के अपनी स्वतन्त्र नीति निर्धारण करने में समर्थ हुए हैं। हम सीधे राजनीति में प्रवेश नहीं करेंगे; वरन् राजनीति को प्रभावित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका सम्पादित करेंगे और यही अन्त तक करते रहेंगे। अपना संगठन यदि अपने प्रभाव और प्रकाश को

सर्वथा तिरस्कृत नहीं कर देता, तो उसे भी इसी मार्ग पर चलते रहना होगा।

भारत की वर्तमान राजनैतिक रीति-नीतियों-शासन की गतिविधियों और तन्त्र की कार्य प्रणाली पर आमतौर से सभी को असन्तोष है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद कई वर्षों की लम्बी अवधि में जो हो सकता था वह नहीं हुआ। तथाकथित आर्थिक प्रगति की बात भी विदेशी ऋण और युद्ध स्थिति तक बढ़ती हुई बेकारी गरीबी को देखते हुए खोखली है। नैतिक स्तर ऊपर से नीचे तक बुरी तरह गिरा है। विद्वेष और अपराधों की प्रवृत्ति बहुत पनपी है। गरीब अधिक गरीब बने हैं और अमीर अधिक अमीर। शिक्षा की वृद्धि के साथ-साथ जो सत्प्रवृत्तियाँ बढ़नी चाहिए थीं, इस दिशा में घोर निराशा ही उत्पन्न हुई है। शासन में कामचोरी और रिश्वतखोरी की प्रवृत्ति बहुत आगे बढ़ गई है और भी बहुत कुछ

ऐसा ही हुआ है जो आँखों के आगे प्रकाश नहीं, अँधेरा ही उत्पन्न करता है। अपनी इस राजनैतिक एवं प्रशासकीय असफलता पर हम में से हर कोई चिन्तित और दु:खी है। स्वयं शासक वर्ग भी समय-समय पर अपनी इन असफलताओं को स्वीकार करके रहते हैं। जिन्हें अधिक क्षोभ है, वे उदाहरण प्रस्तुत करते शासन-कर्त्ताओं की कटु शब्दों में भर्त्सना करते सुनते हैं और अमुक पार्टी को हटाकर अमुक पार्टी के हाथ में शासन सौंपने की बात का प्रतिपादन करते हैं।

हमारे चिन्तन की दिशा अलग है, हम अधिक बारीकी से सोचते हैं। शासन की असफलता से हम दु:खी हैं। हमें बहुत खेद है कि विगत कई वर्षों में जितना बढ़ा जा सकता था, उतना नहीं बढ़ा गया। प्रगति कुछ भी न हुई हो सो बात नहीं, पर गाँधी जी के धर्म राज्य, रामराज्य और विश्व-

मंगल की अध्यात्मिक प्रगति तो अभी लाखों मील आगे की बात है।

इन परिस्थितियों के लिये किसी राजनेता या पार्टी को दोष देकर अपना जी हलका नहीं कर सकते; वरन् गम्भीरता से उन कारणों को तलाश करते हैं जिनके कारण ये विकृतियाँ उत्पन्न हुई हैं। रोग का कारण प्रतीत होने पर ही उसका उपचार सम्भव है। दूसरों की तरह उथला नहीं, अधिक गम्भीर और दूरदर्शी होने की ही किसी दार्शनिक से आशा की जानी चाहिए। देखना यह होगा कि यह सब क्यों हो रहा है ? अपना एक हजार वर्ष का इतिहास देशी और विदेशी सामन्तवाद द्वारा प्रजा के उत्पीड़न का है। इस उत्पीड़न को सरल बनाये रखने के लिये जनता का मनोबल गिरा और बिखरा रखा जाना जरूरी था, सो तत्कालीन दार्शनिकों द्वारा ऐसी विचारधाराओं का प्रचलन

किया गया, जो उपर्युक्त प्रयोजन पूरा कर सकें। शासन की दृष्टि से प्रजा ने जो नृशंसता पायी और दर्शन की दृष्टि से भ्रान्ति। 'ब्राह्म' और 'क्षात्र' दोनों ही अवाँछनीय स्वार्थों की सिद्धि में लगे थे। प्रजा इस चक्की में भौतिक और आत्मिक दृष्टि से निरन्तर पददलित होती रही। यही एक तथ्य है जिसने भारत जैसे उत्कृष्ट परम्पराओं वाली प्रजा पर हजार वर्ष जितनी लम्बी अवधि तक पददलित रहने का कलंक लगाया।

गाँधी जी की दृष्टि

इन विपन्न परिस्थितियों से देश को उबारने के लिए यों छुट-पुट प्रयत्न बहुत पहले से चल रहे थे पर उन्हें सुसंगठित और सुसंचालित होने का श्रेय गांधी जी के नेतृत्व को मिला। वे असली कारण जानते थे और प्रयत्नशील थे कि रचनात्मक कार्यों

और बौद्धिक जागरण, स्वतन्त्र चिन्तन के माध्यम से प्रजा के मनोबल, चरित्र स्तर, स्वाभिमान एवं शौर्य को जगाया बढ़ाया जाए। स्वतन्त्रता संग्राम वे धीरे-धीरे चला रहे थे। क्रान्तिकारियों से उनके मतभेद का मूल कारण यह था कि वे चाहते थे स्वराज्य धीरे-धीरे उस क्रम से आये जिस क्रम से देश उसे सँभालने योग्य प्रतिभा अपने में पैदा कर ले।

स्वतन्त्रता संग्राम के साथ चर्खा, खादी, हरिजन सेवा, ग्रामोद्योग, राष्ट्रीय शिक्षा, सफाई जैसी प्रवृत्तियों को जोड़ देना यों बहुत अटपटा लगता है। असहयोग आन्दोलन और सत्याग्रह की दार्शनिकता कितनी ही ऊँची क्यों न हो ? पर उसका व्यावहारिक पक्ष यह था कि इन सरलतम उपायों द्वारा जनता अपनी मूल चेतना विकसित करे और स्वराज्य धारण कर सकने में समर्थ हो जाये। वे जानते थे कि विभूति प्राप्त करने से अधिक कठिन उसे पचाना होता है। शक्ति

की असली परीक्षा कोई सफलता प्राप्त कर लेना भर नहीं है; वरन् उसके सदुपयोग से ही प्राप्तकर्त्ता का गौरव आँका जाता है। भगीरथ गंगा अवतरण की पृष्ठभूमि बनाने में सफल हो गए थे, पर उस धारा को सुव्यवस्थित रूप में प्रवाहित करने के लिए शंकर जी को अपनी जटाएँ फैलानी पड़ीं। यही सर्वत्र होता है। गांधी जी के मन में स्वराज्य प्राप्ति करने की जल्दी नहीं थी, वे जनता को उस आन्दोलन महायज्ञ से प्रबुद्ध, सतर्क और सक्षम बना रहे थे।

क्रान्तिकारी कहते थे कि बिना शस्त्र धारण किये और मजबूरी प्रस्तुत किये बिना अँगरेज जाने वाले नहीं हैं। बात उन्हीं की सच निकली। सन् १९४२ में क्रान्तिकारी तोड़-फोड़ ने सिद्ध कर दिया कि असहयोग सत्याग्रह नहीं शस्त्र धारण ही वर्तमान स्थिति में राज क्रान्तियों की अनिवार्य आवश्यकता है। इस तथ्य को गांधी जी भी जानते थे। वे स्वराज्य

की उतावली में न थे, जनता की उन दुर्बलताओं को हटाने में लगे थे, जो पिछले हजार वर्ष के अज्ञानान्धकार युग में पीढ़ी दर पीढ़ी के हिसाब से चलते रहने पर उसके स्वभाव में सम्मिलित हो गई थीं। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों ने जब भारत को स्वराज्य दिला ही दिया था, तो वे इन असामयिक उपलब्धियों से जितने प्रसन्न थे, उतने ही चिन्तित भी। जन जागरण का प्रयोजन पूरा नहीं हो सका था। इसलिए उन्हें चिन्ता थी कि इस गंगावतरण का सुसञ्चालन कैसे होगा ?

उन दिनों उन्होंने एक अति महत्त्वपूर्ण सुझाव रखा था कि काँग्रेस लोकसेवी संस्था का रूप धारण करे और जन जागरण के नितान्त आवश्यक कार्य में ही जुटी रहे। राजतन्त्र चलाने के लिये एक उस स्तर के लोगों की पिछली पंक्ति बना दी जाये। प्रजा पर प्रभाव रखकर काँग्रेस, राजनेताओं की नियुक्ति

एवं उनकी रीति-नीति पर नियन्त्रण करे, पर स्वयं उससे पृथक् रहकर वह जन-मानस के परिष्कार का मूल प्रयोजन पूरा करे, जो किसी राष्ट्र की सर्वतोमुखी प्रगति का-यहाँ तक कि सुशासन का भी मूल आधार है।

चूक हुई, दिशा बिगड़ी

उन दिनों परिस्थितियाँ विचित्र थीं। काँग्रेस नेता गांधी जी से सहमत न हो सके। सारी शक्ति राजतन्त्र को सँभालने में लग गई। रचनात्मक कार्यों में विश्वास करने वाले लोकसेवी भी उसी तन्त्र में खप गए। सबका ध्यान सत्ता की ओर चला गया। सत्ता एक नशा है, उसका चस्का जिसे लगा कि फिर वह उसी घाट का हो लिया। काँग्रेस और उसका परिवार उसी दिशा में चल पड़ा। जन जागरण के लिए जिन रचनात्मक एवं संघर्षात्मक कार्यक्रमों की जरूरत

थी। वे या तो विस्मृत हो गये या उनकी लकीर पिटती रही। अन्य छोटी-बड़ी राजनैतिक एवं सामाजिक स्तर की संस्थाओं का भी यही हुआ। उन्होंने भी अपनी बड़ी बहन का अनुकरण किया। अपना बाहरी जामा वे कुछ भी बनाये रही हों, भीतर ही भीतर सत्ता संघर्ष के लिए चल रही विभिन्न पार्टियों की प्रतिद्वन्द्विता में ही वे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में शामिल थीं। ध्यान बँटा सो बँटा। पिछले कई वर्षों में जिस बौद्धिक, नैतिक एवं सामाजिक क्रान्ति की जरूरत थी, शिक्षा और कला के महान् माध्यमों को सृजनात्मक दिशा में लगाने के लिये उन्हें हथियाया या अपनाया जाना चाहिए था, उस दिशा में किसी ने कुछ नहीं किया। इस भूल को हम ईमानदारी से स्वीकार कर लें, तो कुछ हर्ज नहीं है।

दिशा भूलने का जनमानस में हजार वर्ष की गुलामी की कुसंस्कारी प्रक्रिया हटाने की उपेक्षा करने का जो परिणाम होना चाहिए था, वह सामने है। उन परिस्थितियों, उत्कृष्ट राजनेतृत्व एवं आदर्श शासन तन्त्र की आशा रखना व्यर्थ है। राजनेताओं का चुनाव होता है। चुनावों द्वारा प्रतिनिधि चुने जाते हैं और उनके चुनाव से सरकारें बनती हैं। जनता का जो स्तर है उसमें चुनाव जीतने के लिए पैसे को पानी की तरह बहाने की—जाति-पाँति के नाम पर लोगों को बरगलाने की—व्यक्तिगत या स्थानीय लाभ दिलाने के सब्जबाग दिखाने की अनिवार्य आवश्यकता पड़ती है। जो यह सब तिकड़में भिड़ाने में समर्थ न हो, उसका चुनाव जीतना कठिन है। जनता का स्तर ही ऐसा है कि वह वोट का मूल्य और उसके दूरगामी परिणामों को अभी समझ ही नहीं पायी। झाँसेपट्टी और वास्तविकता का अन्तर

करना उसे आया ही नहीं, इसलिए चुनाव में वे लोग जीत न सके, जो रामराज्य स्थापित कर सकने में सचमुच समर्थ हो सकते थे। जनता ने अपने स्तर के विधायक चुने। उन विधायकों ने अपने स्तर की सरकारें बनायीं, उन सरकारों के सञ्चालकों ने वही किया, जो जनता कर रही है या कर सकती है। जड़ के आधार पर पत्ते बनते हैं। धतूरे के बीज से उगे पौधे पर शहतूत कहाँ से लगें ?

राज्य शासन के सञ्चालन में जो व्यक्ति काम करते हैं, उनकी मनोभूमि एवं कार्यशैली ही शासन तन्त्र के सञ्चालन का स्वरूप निखारती है। कानून कितने ही अच्छे क्यों न हों, नीतियाँ कितनी ही निर्दोष क्यों न हों, योजनाएँ कितनी ही बढ़िया क्यों न हों, उनके सञ्चालन का भार जिस मशीनरी पर है, उसके पुर्जे यदि घटिया होंगे, तो सारा गुड़-गोबर

होता रहेगा। सरकार कई योजनाएँ बनाती और चलाती हैं पर उसका स्वरूप जनता तक पहुँचते-पहुँचते विकृत हो जाता है, क्योंकि जिनके हाथ में उस प्रक्रिया के सञ्चालन का भार है, वे उतने शुद्ध नहीं होंगे, जितने होने चाहिए।

अपराधों के रोकने और अपराधियों को पकड़ने की जिम्मेदारी जिस मशीन पर है यदि ऊँचे स्तर की हो और भावनापूर्वक काम करे, तो निस्सन्देह अपराधों का उन्मूलन हो सकता है। उपयोगी कार्यों के लिए ऋण या अनुदान बाँटने वाली मशीन यदि स्वच्छ हो, तो वह धन खुर्द-बुर्द न होकर सचमुच-सम्पत्ति और सुविधा बढ़ाने में समर्थ हो सकता है। शिक्षा देने वाली मशीन यदि भावनाओं से ओत-प्रोत हो तो छात्रों को ढालने में उन व्यक्तियों का जादू आश्चर्यजनक ढलाई का प्रतिफल प्रस्तुत कर सकता है। सरकारी कानूनों या

योजनाओं में उतना दोष नहीं है जितना कि प्रस्तुत प्रक्रिया का सञ्चालन करने वाली मशीनरी की आदर्शवादी भावनाओं का न्यूनतम रूप है।

अब करना है भूल सुधार

प्रश्न उत्पन्न होता है कि यह शासन-सञ्चालन करने वाली मशीन कैसे उत्कृष्ट बने ? तो फिर बात लौटकर वहीं आ गई। सरकारी कर्मचारी आकाश से नहीं उतरते। वे जनता के ही बालक होते हैं। उनने अपने घर-परिवार से सम्बद्ध समाज में जो कुछ देखा, सुना, समझा, अनुभव किया है, उसी के आधार पर उनका मानसिक स्तर एवं चरित्र ढला है। नौकरी पाते ही वे उन सारे संस्कारों को भुलाकर देवता बन जायें, यह आशा करना व्यर्थ है। उसी प्रकार पैसा लेकर वोट बेचने वाली, जाति-पाँति का पक्षपात करने वाली, व्यक्तिगत या क्षेत्रीय लाभ के

प्रलोभनों से आकर्षित होने वाली अदूरदर्शी जनता से यह आशा करना व्यर्थ है कि वह उन्हें चुनेगी जो सुयोग्य एवं आदर्शवादी तो हैं, पर पैसा लुटाने या बहकने वाले हथकण्डे अपनाने में समर्थ नहीं। यह एक सच्चाई है कि प्रजातन्त्र में जनता के स्तर की ही सरकार बनती है और उसी स्तर की सरकारी मशीन चलती है।

पार्टियों की सत्ता बदले, इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। पिछले कुछ दशकों में किसी पार्टी विशेष का एकाधिकार नहीं रहा। कई पार्टियों की अलग या सम्मिलित सरकारें बनीं। उन्होंने भी कोई अलग आदर्श प्रस्तुत नहीं किया, जिस कीचड़ में बड़ी पार्टियों का छकड़ा घिसट रहा था, उसी में खड़खड़ियाँ भी धँस गईं। सच्चाई यह है कि इन परिस्थितियों में कुछ हो ही नहीं सकता। प्रबुद्ध लोकमत जाग्रत हुए बिना—आया राम गया राम—

की हथफेरी रुक ही नहीं सकती। अल्पमत को बहुमत में और बहुमत को अल्पमत में बदलने के लिये प्रलोभन और आतंक का वर्तमान दौर अनन्त काल तक चलता रहेगा, यदि विधायकों-सांसदों को अपनी जनता के रोष एवं अवरोध का भय उत्पन्न न हुआ तो। इसी प्रकार जो भी सरकारें सत्ता में आएँगी, उनके मन्त्री यदि अपने समर्थकों के, अपने क्षेत्र के लिए सरकारी मशीन से काम लेंगे, तो उन पुर्जों से अपने स्वार्थ साधने की भी छूट देनी होगी। फिर प्रशासन शुद्ध कैसे होगा?

मूल समस्या यही है। किस पार्टी की सरकार बने, वह किन योजनाओं को कार्यान्वित करे, ये प्रश्न कम महत्त्व के हैं। अधिक महत्त्व के प्रश्न ये हैं कि चुनाव बिना खर्च कैसे कराएँ, उपयुक्त व्यक्तियों को चुनने का जन स्तर कैसे बने? और सरकारी मशीन में पुर्जे बनने वाले कर्मचारी घर से ही

आदर्शवादी एवं भावना सम्पन्न बन कर वहाँ तक कैसे पहुँचें ? यह समस्या पर्दे के पीछे दीखती है, पर है यही सबसे महत्त्वपूर्ण। इसे हल किये बिना तथाकथित प्रगति में खोखलापन ही बना रहेगा।

प्रजातन्त्र की जड़ जनता है। जहाँ जनता का स्तर ऊँचा होगा वहीं प्रजातन्त्र सफल हो सकेगा। हमें यदि प्रजातन्त्र पसन्द है, तो उसकी सफलता की अनिवार्य शर्त जनता का भावनात्मक एवं चारित्रिक स्तर भी ऊँचा उठाना ही पड़ेगा, अन्यथा शिकायतें करते रहने के अतिरिक्त और कुछ हाथ न लगेगा। स्वराज्य प्राप्ति के समय गांधी जी इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए चिन्तित थे और जोर दे रहे थे कि काँग्रेस शासन में न जाए वरन् लोकमानस का निर्माण करने के अधूरे, किन्तु अति महत्त्वपूर्ण कार्य को सँभालने में ही दत्त चित्त होकर जुटी रहे।

तथ्य—तथ्य ही रहेगा। आवश्यकता—आवश्यकता ही रहेगी। एक उसे पूरा नहीं करता, तो दूसरे को अपना कन्धा लगाना चाहिए। यही रचनात्मक तरीका है। स्वतन्त्रता संग्राम में १२ वर्ष तक निरन्तर मोर्चे पर लड़ते रहने वाले सैनिक के रूप में अड़े रहने के उपरान्त उस संग्राम की पूरक परिधियों के महत्त्व को हम समझते रहेंगे। हमारा विश्वास है कि बौद्धिक क्रान्ति, नैतिक क्रान्ति एवं सामाजिक क्रान्ति की त्रिवेणी बहाए बिना तीर्थराज न बनेगा और उसमें स्नान किये बिना हमारे पाप-ताप न कटेंगे। राजनैतिक स्वतन्त्रता का लाभ तभी प्राप्त किया जा सकेगा, जब उसके साथ ही बौद्धिक, नैतिक एवं सामाजिक क्षेत्रों को भी पवित्र और पुष्ट बनाया जाये। उसे परावलम्बी बनाने वाली कुटिलता के पाश से मुक्त कराया जाये।

स्वतन्त्रता का एक चरण अभी प्राप्त हुआ। तीन मोर्चों पर लड़ा जाना अभी भी शेष है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए हम उसी प्रयत्न में निरन्तर प्रयत्नशील रहे हैं। दूसरे सैनिकों ने अपनी वर्दियाँ उतार दीं और राजमुकुट पहन लिये पर अपने लिये आजीवन उस चिन्तन लक्ष्य की ओर चलते रहना ही धर्म बन गया है। जिसके ऊपर राष्ट्र की सर्वतोमुखी समर्थता निर्भर है। राष्ट्र की बात ही क्यों सोचें, विश्वकल्याण का मार्ग भी यही है। जनजागरण और लोकमानस में उत्कृष्टता, आदर्शवादिता का बीजांकुर बोया जाना वस्तुतः इस धरती पर स्वर्ग के अवतरण का अभिनव प्रयोग है। हम इसी दूरगामी परिणाम उत्पन्न करने वाली प्रक्रिया को हाथ में लेकर धर्म, साहस, निश्चय और प्रबल पुरुषार्थ के साथ आगे बढ़ रहे हैं और जहाँ तक हमारा प्रभाव क्षेत्र है, उसे उसी दिशा में घसीटते लिये चल रहे हैं।

हम जानते हैं कि जनमानस के अन्तरंग का स्पर्श करने और कोमल भावनाओं को संवेदनशील बनाने की क्षमता राजतन्त्र में नहीं है। उसकी मूल प्रकृति और प्रवृत्ति दूसरी है। कूटनीति, राजनीति का पर्यायवाची बन गयी है। उस स्तर में जो कुछ होगा लोग उसमें अकारण ही किसी कूटनीति या दुरभिसन्धि की गन्ध सूँघेंगे। इसलिए राजतन्त्र के द्वारा इस प्रकार के प्रयत्न या प्रयोग जब कभी हुए हैं, उन्हें असफलता ही हाथ लगी है। यह क्षेत्र वस्तुत: धर्म एवं दर्शन का है। बौद्धिक, नैतिक एवं सामाजिक क्रान्ति के लिए विचारणा का स्तर बहुत गहराई से बदलना होगा। उथला बदलाव कोई स्थिर परिणाम उत्पन्न न करेगा। इस प्रयोजन की पूर्ति में केवल धर्मतन्त्र ही समर्थ हो सकता है।

राजनैतिक स्तर पर बाल-विवाह, छुआ-छूत निवारण, दहेज उन्मूलन, व्यभिचार विरोधी कानून

बने हुए हैं, पर उनको कितना मान मिला और कितना परिणाम निकला यह सबके सामने है।

भौतिक सुधार कराना राजतन्त्र का क्षेत्र है। भावनात्मक सुधार के लिए प्रजातन्त्र के वातावरण में केवल धर्मतन्त्र ही समर्थ हो सकता है। प्रजातन्त्र हटाकर अधिनायकवाद आना है तो आतंक के आधार पर विचार परिवर्तन भी सम्भव है, पर वह प्रयोग महँगा है। व्यक्ति की विचार स्वतन्त्रता अपहृत हो जाने पर वह एक मशीन मात्र रह जाता है और सांस्कृतिक प्रगति की जिस महान् प्रक्रिया ने मानव जाति को यहाँ तक पहुँचाया उसका द्वार ही बन्द हो जाता है। हम प्रजातन्त्र पसन्द करते हैं। उसमें बहुत खूबियाँ और सम्भावनाएँ सन्निहित हैं। फिर प्रजातन्त्र की परिधि में जनमानस का निर्माण करना धर्म एवं अध्यात्म का ही क्षेत्र रहता है।

हम यही कर रहे हैं। धर्म और अध्यात्म को हमने मानव जाति की समग्र प्रगति के लिए नियोजित किया है। पिछले दिनों उसमें जो अवांछनीयताएँ घुस पड़ी थीं, उन्हें सुधारा है। धर्ममंच अब तक प्रतिगामियों का दुर्ग समझा जाता है, हमने उसे नई दिशा दी है और उसकी मूल प्रवृत्ति, प्रगतिशीलता को उभारा है। धार्मिक प्रथा परम्पराओं, रीति-रिवाजों, कर्मकाण्डों और मान्यताओं के बाह्य स्वरूप को यथावत् रखते हुए उनकी दिशा और प्रवृत्ति में क्रान्तिकारी परिवर्तन प्रस्तुत किये हैं। यही कारण है कि जिस क्षेत्र की ओर से नाक-भौं सिकोड़ी जाती थी और जिसे निराशाजनक माना जाता था, अब उसे मानवीय प्रगति की निर्णायक भूमिका सम्पादन करने में समर्थ माना जाने लगा है।

पिछले दिनों (धार्मिक अन्धविश्वासों से) क्षुब्ध कुछ लोग (आस्थाओं की) तोड़-फोड़ में लग गए

थे। वे दीर्घकालीन परम्पराओं को उखाड़कर आमूल-चूल परिवर्तन लाना चाहते थे। वे भूल जाते थे कि ८० प्रतिशत देहातों में बसे हुए और ७७ फीसदी अशिक्षित देश के लिये धर्म परम्पराओं में क्रान्तिकारी तोड़-फोड़ सरल नहीं है। वे प्रयत्न भी लगभग असफल हो गए। अपनी सुधारात्मक प्रक्रिया आँधी-तूफान की तरह इसलिए सफल होती चली जा रही है कि हमने धर्मप्रथाओं एवं कलेवरों के बाह्य स्वरूप में हेर-फेर किये बिना उनके मूल प्रयोजन में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया है।

इस प्रकार परोक्ष रीति से हम राजनीति में भाग ले रहे हैं और राजनैतिक शुद्धता एवं प्रखरता की पृष्ठभूमि तैयार कर रहे हैं। प्रत्यक्ष राजनीति में बहुत लोग घुसे पड़े हैं। वहाँ इतनी भीड़ है जिसे बढ़ाया नहीं घटाया जाना चाहिए। प्रजातन्त्र की मूल शक्ति जनता में निहित रहती है। जनता अपना

बौद्धिक, नैतिक एवं सामाजिक स्तर ऊँचा उठाये बिना ऊँचे स्तर का शासन एवं राजनेतृत्व प्राप्त कर नहीं सकेगी।

हम राजनीति से अलग नहीं हैं, न उसका मूल्य कम कर रहे हैं। बात इतनी भर है कि हम जड़ में खाद, पानी लगाने वाले माली बने रहना चाहते हैं। फूल और फल का व्यापार दूसरे लोग करें, इसमें न हमें कोई आपत्ति है और न ईर्ष्या। हम अनुभव करते हैं उथले राजनीतिज्ञों की अपेक्षा हम अधिक ठोस और अधिक महत्त्वपूर्ण नीति अपना रहे हैं और हमारे प्रयत्नों का फल किसी भी राजनैतिक पार्टी या उसकी सरकार की अपेक्षा अधिक सत्परिणाम उत्पन्न करेगा। गांधी जी का जनमानस निर्माण का काम अधूरा रह गया, हमें उनके शेष काम को पूरा करने वाले कुली, मजदूर की तरह जुटे रहना मंजूर है। दूसरे लोग अपने तप का प्रतिफल

चखें–चखते रहें। अपने मुँह से उसके लिये लार टपकने वाली नहीं है। हम स्वस्थ राजनीति के विकसित हो सकने के सम्भावना वाला भवन बनाने में नींव के पत्थर मात्र बनकर रहेंगे और जो भी हमारे प्रभाव सम्पर्क में आयेगा, उसे इसी दिशा में प्रेरित, आकर्षित करते रहेंगे।

इस सन्दर्भ में युगऋषि ने समाज के प्रबुद्ध जनों को लक्ष्य करके उनसे भी इस दिशा में प्रयास करने की अपील की है। उनके कथन का सारांश कुछ इस प्रकार है–

धर्म क्षेत्र में कार्य कर रहे अन्य संगठन भी इस दिशा में सार्थक प्रयास कर सकते हैं। इसके लिए उन्हें धर्मतंत्र के मर्म को समझते हुए सम्प्रदाय तंत्र से ऊपर उठकर सोचना होगा।

धर्म उस अनुशासन का नाम है, जो मनुष्य को पशुता की ओर जाने से रोककर देवत्व की दिशा में

प्रेरित करता है। जैसे शारीरिक व्यायाम वही श्रेष्ठ है, जो शारीरिक आरोग्य और स्वास्थ्य प्रदान करें, उसी प्रकार बड़ी धार्मिक आचार व्यवहार श्रेष्ठ है, जो मनुष्यों का चारित्रिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य उत्तम बना सकें।

इस दिशा में कार्य करने वाले सामाजिक संगठनों को 'प्रजातंत्र' के पक्ष में 'पार्टी तंत्र' से ऊपर उठाना होगा।

प्रस्तुत पुस्तक का ज्यादा से ज्यादा प्रचार-प्रसार कर लोगों को जागरूक करने हेतु निवेदन है।

- प्रकाशक

सन् 2011 मूल्य- 5/-

गायत्री तीर्थ-शांतिकुंज, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

फोन-01334-260602, Email :shantikunj@awgp.org